E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में रसविधान

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

कालिदास स्वभावतः रससिद्ध कवि हैं। काव्य का आत्मभूत रसतत्त्व सदा उनकी दृष्टि के सामने विराजमान रहता है। इसीलिये उनकी काव्य कला भी रसवादी है। उनका रसवादी दृष्टिकोण उनकी सभी कृतियों में पदे पदे परिलक्षित होता है। सामान्यतः रसवादी होते हुए भी गम्भीर रसों की अपेक्षा कोमल रसों के चित्रण में उनकी दृष्टि अधिक रमी है। कोमल रसों में भी उनका झुकाव शृङ्गार रस के प्रति अधिक है। इसीलिये वे प्रधानतया शृङ्गार रस के कवि माने जाते हैं। शृङ्गार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों को उद्घाटित करने में उनकी काव्यकला सर्वथा दक्ष है। मेघदूत के उत्तर मेघ तथा रघुवंश के चतुर्दश सर्ग में वियोग पक्ष का सजीव चित्र चित्रित है। इन दोनों स्थलों में उनकी व्यञ्जना शक्ति ने वियोग को अधिक गम्भीर एवं तीव्र बना दिया है। कुमारसम्भव के अष्टम सर्ग में शिव-पार्वती का सम्भोग-वर्णन भी संयोग पक्ष को समुद्घाटित करने में सर्वथा क्षम है। संयोग शृङ्गार के आलम्बन-उद्दीपन दोनों विभावों के चित्रण में कालिदास को जितनी सफलता मिली है उतनी शायद किसी अन्य को मिली हो। उनके तीनों नाटकों में भी शृङ्गार रस ही अङ्गी बनकर अपने भव्यरूप में चित्रित है। नीचे शाकुन्तल की रस योजना पर संक्षिप्त प्रकाश डाला रहा है-

नाट्य-शास्त्रीय विधान के अनुसार शाकुन्तल का प्रधान रस शृङ्गार है। शाकुन्तल में शृङ्गार रस के दोनों पक्षों का पूर्ण परिपाक हुआ है। शाकुन्तल के प्रारम्भिक तीन अङ्कों में सम्भोग शृङ्गार का ही निदर्शन है। नाटक का प्रारम्भ तथा अन्त दोनों सम्भोग शृङ्गार से होता है।

सम्भोग शृङ्गार- प्रथम अङ्क में अपनी सखियों के साथ वृक्षों का सिंचन करती हुई शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त के हृदय में शकुन्तला के प्रति अनुराग अंकुरित हो जाता है- **"मधुरमासां दर्शनम्", "शुद्धान्त दुर्लभमिदं वपुः....."**। तदनन्तर वह शकुन्तला के रूप माधुर्य पर अत्यधिक आकृष्ट होकर-

"इदं किलाव्याजमनोहरं.....", "सरसिजमनुविद्धं....." आदि के द्वारा उसकी रूप माधुरी की मन ही मन प्रशंसा करता है और शकुन्तला के वृत्तान्तज्ञान से उसको (शकुन्तला को) क्षत्रिय के विवाह योग्य जानकर वह उसकी प्राप्ति के लिये लालायित हो जाता है और अवसर मिलने पर उससे अपने प्रेम की अभिव्यक्ति **"द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे..."** में करता है। **"अपरिक्षतकोमलस्य", "उपरागान्ते"** आदि स्थल द्रष्टव्य हैं जहाँ सम्भोग शृङ्गार की अच्छी व्यञ्जना हुई है।

उधर शकुन्तला भी दुष्यन्त के आकर्षक व्यक्तित्व तथा मनोहर रूप को देखकर मुग्ध हो जाती है जिससे उसके हृदय में प्रेम का पदार्पण हो जाता है- **"किं नु खल्विमं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनो-संवृत्ता", "यथात्मनः प्रभविष्यामि", "वाचं न मिश्रयति"**। इस प्रकार नायक-नायिका दोनों के हृदय में प्रेम का राज्य प्रतिष्ठित हो जाता है। तृतीय अङ्क में शकुन्तला के प्रेमपत्र **"तव जाने हृदयं....अङ्गानि"** से पूर्णतः विश्वस्त होकर दुष्यन्त और शकुन्तला का गान्धर्व विवाह हो जाता है। इस प्रकार सम्भोग शृङ्गार की चरमपरिणति हो जाती है। इस बीच जो भी रस चित्रित हैं सभी के द्वारा सम्भोग शृङ्गार की पुष्टि होती है। नाटक के अन्त में एक लम्बे अन्तराल के बाद दुष्यन्त शकुन्तला के मिलने में सम्भोग शृङ्गार पुनः प्रतिष्ठित होता है।

विप्रलम्भ शृङ्गार- विप्रलम्भ शृङ्गार के बिना सम्भोग की पुष्टि नहीं होती– **"न विना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते"** इस सिद्धान्त के अनुसार कवि ने विप्रलम्भ के चित्रण में सतर्कता अपनायी है। नाटक के पूरे द्वितीय, तृतीय (प्रारम्भ तथा अन्त में) एवं षष्ठ अङ्क में मुख्य रूप से विप्रलम्भ शृङ्गार ही वर्णित है। विरहावस्था में दुष्यन्त की विरह-पीडा को व्यक्त कराने वाले निम्नाङ्कित स्थल द्रष्टव्य हैं जिसमें वह अपनी प्रेयसी शकुन्तला के रूप तथा काम चेष्टाओं आदि का वर्णन करता है- **"स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि", "चित्रे निवेश्य", "अभिमुखे मयि संहृतमीक्षितं"** उसकी कामपीडा तो इतनी बढ़ जाती है कि उस पर चन्द्रमा की शीतल किरणें अग्नि की वर्षा करती हैं और कामदेव के कोमल पुष्प बाण भी वज्र की भाँति प्रहार कर रहे हैं-

तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दोर्द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु।
विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूकैस्त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि।।

तृतीय अंक के प्रारम्भ में दुष्यन्त के वियोग में शकुन्तला भी अत्यन्त कृश होकर शिला-पट्ट के ऊपर पुष्प शैय्या पर लेटी हुई दृष्टिगोचर होती है। वह अत्यन्त अस्वस्थ शरीरा हो गयी- **"बलवदस्वस्वशरीरा शकुन्तला दृश्यते"**। उसके शरीर में केवल लावण्यमयी छाया रह गयी है– **"केवलं लावण्यमयी छाया त्वां न मुञ्चति"**। वियोग-व्यथा से व्यथित होकर उसकी दशा झुलसी हुयी वासन्ती लता की भाँति हो गयी है। गान्धर्व विवाह हो जाने के बाद तृतीय अङ्क के अन्त में भी विप्रलम्भ की ही स्थिति है।

षष्ठ अङ्क में शकुन्तला की वियोग-व्यथा की कोई चर्चा नहीं है। राजा की विरहावस्था दयनीय दशा को प्राप्त हो जाती है। वह वसन्तोत्सव को रोक देता है, किसी रमणीय वस्तु में उसकी रुचि नहीं है। करवटें बदल कर रात बिताता है- "रम्यं द्वेष्टि...", उसने अलङ्कारादि का परित्याग कर दिया है- "प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिः.....", और अपने दरबार में जो उसने शकुन्तला का अपमान किया था उसका स्मरण कर उसका हृदय दग्ध हो रहा है– **"इतः प्रत्यादेशात्"** और मुद्रिका आदि को देख कर उसका विरह और तीव्र हो जाता है- "तव सुचरितमङ्गुलीय....."।

करुण विप्रलम्भ- चतुर्थ अङ्क में शकुन्तला की विदाई के अवसर पर एक मर्मस्पर्शी कारुण्य की व्यञ्जना हुई है जिसके कारण वीतरागी कण्व समेत शकुन्तला की सखियाँ ही विरह व्यथित होकर नहीं तडपती अपितु पूरा तपोवन तड़प जाता है। एतदर्थ चतुर्थ अङ्क के ये स्थल द्रष्टव्य है- "यास्यत्यद्य शकुन्तलेति.....", "उद्गलितदर्भकवला.....", यस्य त्वया व्रणविरोपणम्.....", "शममेष्यति.....।" इसी प्रकार पञ्चम अङ्क में दुष्यन्त से तिरस्कृत शकुन्तला अत्यन्त खिन्न होकर जब भगवती वसुन्धरा से शरण माँगती है- "भगवति वसुन्धरे देहि मे विवरम्" तो उस समय भी कारुण्य की ही व्यञ्जना होती है। नाटक में शृङ्गार के बाद दूसरा स्थान करुण का ही है।

हास्यरस- द्वितीय, पञ्चम और षष्ठ अङ्क में विदूषक की चेष्टाओं और उक्तियों द्वारा हास्यरस की व्यञ्जना होती है। द्वितीय अङ्क का श्रीगणेश ही हास्य से होता है "विदूषकः-भो दिष्टम्"। हास्य रस के लिये विदूषक की ये उक्तियाँ अवलोकनीय हैं- "कि मोदक खादिकायाम्", "यथा कस्यापि पिण्डखर्जूरैः", "न खलु दृष्टमात्रस्य", "कृतं त्वयोपवन तपोवन नाम", "त्रिशङ्कुरिवान्तरा तिष्ठ"। पञ्चम अङ्क दर्शकों के

हृदय में हास्यरस का सच्चार करती है। षष्ठ अङ्क में विदूषक का डण्डा लेकर कामबाण को तोड़ने के लिये दौड़ना "दण्डकाष्टेन कन्दर्पव्याधिम्", भूख द्वारा उसको (विदूषक को) ही खा जाने की बात, दाढ़ी वालों को चित्र में भर देने की बात भी हास्य की अवतारणा में सहायक होती है।

शाकुन्तल में उक्त रसों के अतिरिक्त अन्य रसों की व्यञ्जना स्वल्प मात्रा में ही हुई है। केवल वीर रस का चित्रण अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। वीर रस के लिये ये सन्दर्भ दर्शनीय हैं- द्वितीय अङ्क में "नैतद् चित्रम्...", तथा तृतीय अङ्क में "का कथा बाणसन्धाने...."। इसी प्रकार षष्ठ अङ्क में कञ्चुकी द्वारा राजा की प्रशस्ति तथा मातलि द्वारा दैत्यों और राक्षसों के वध के बाद राजा की वीरता के उल्लेख में भी वीर रस द्योतित होता है।

शाकुन्तल के भयभीत मृग के भागने "ग्रीवाभाभिरामम्....", भयभीत हाथी तथा राक्षसों के आश्रम में प्रवेश करने के वर्णन में "तीव्राघात .....", "सायन्तने सवनकर्मणि...." में भयानक रस, दुर्वासा के शाप तथा पञ्चम अङ्क में शार्ङ्गरव आदि के कथन में रौद्ररस, तथा सप्तम अङ्क में मारीच के पावन आश्रम के वर्णन में शान्त रस तथा सप्तम अङ्क में सर्वदमन के वर्णन में "आलक्ष्यदन्दमुकुलान्....." आदि स्थलों में वात्सल्य रस का सञ्चार हुआ है।